औषधि नियंत्रण - फिसलन भरी ढलान

पी. बालाराम

औषधि उद्योग से सम्बंधित विवाद को नई बात नहीं है। प्रायः ऐसा होता है कि किसी दवाई के व्यापक और कभी-कभी अंधाधुंध उपयोग के कारण उसकी मांग बढ़ जाती है और उद्योग इसकी पूर्ति करने की होड़ में लग जाता है।

वैसे इसमें कोई शक नहीं कि पिछली लगभग एक शताब्दी में हुए औषधि अनुसंधान ने मानव स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान दिया है। दरअसल रासायनिक उपचार का सूत्रपात पॉल एहर्लिश के शोध से माना जा सकता है। बैक्टीरिया संक्रमण के खिलाफ लड़ाई की शुरुआत जेहार्ड डोमेक द्वारा प्रोन्टोसिल की खोज के साथ हुई। प्रोन्टोसिल के साथ ही सल्फा औषधियों का दौर शुरु हुआ था। 1929 में फ्लेमिंग ने पेनिसिलिन की खोज की और उसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध की आवश्यकताओं ने हॉवर्ड फ्लोरी और अर्नेस्ट चैन को एण्टी बायोटिक औषधियों का सूत्र दिया। इस संदर्भ में रॉकफेलर संस्थान में रेने डोबोस द्वारा ग्रेमिसिडीन सम्बंधी शोध भी महत्वपूर्ण था मगर पेनिसिलिन की चकाचौंध में कई बार यह उभर नहीं पाता। क्लासिक दौर में संयोगवश औषधि खोज की कहानियों की भरमार है। इसका ताज़ा उदाहरण हमें जॉर्ज लेशर द्वारा नेलिडिक्सिक एसिड नामक जीवाणु रोधी की खोज में मिलता है, वे दरअसल क्लोरोक्वीन बनाने में लगे थे।

औषधियों की विभिन्न किस्मों ने पिछली एक सदी में चिकित्सा की शक्ल ही बदल दी है। इसके साथ-साथ रोग निदान में काफी तरक्की हुई है जिसकी वजह से रोगों की पहचान काफी प्रारंभिक अवस्था में ही संभव हो गई है। फिर टीकों ने रोकथाम के कार्य को अधिक सशक्त किया है। इन सबके फलस्वरूप मानव स्वास्थ्य में काफी सुधार आया है। किन्तु प्रमुख बहुराष्ट्रीय कंपनियों की वित्तीय ताकत बहुत बढ़ी है, दवा अनुसंधान की लागत में बहुत इज़ाफा हुआ है, कंपनियों की व्यापारिक रणनीतियां बदली हैं और पेटेन्ट कानूनों में अभूतपूर्व बदलाव हुए हैं। इन सबके मिले-जुले प्रभाव से कुछ समस्याएं भी पैदा हुई हैं।

हाल में निमेसुलाइड (निमुलिड) नामक औषधि के अंधाधुंध इस्तेमाल की वजह से साइड प्रभावों का मुद्दा सामने आया है। निमेसुलाइड दर्द व बुखार के लिए इस्तेमाल की जाती है और यह बच्चों में लीवर की गड़बड़ियां पैदा करती है। निमेसुलाइड एक गैर-स्टीरॉइड सूजन रोधी दवाई है। अचानक ही यह एक 'बेस्टसेलर' बन गई है। अकेले भारत में इसकी सालाना बिक्री 200 करोड़ रुपए की है। कई भारतीय कंपनियां यह दवा बनाती-बेचती हैं, कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी इसे भारत में नहीं बेच रही है। गौरतलब बात यह है कि निमेसुलाइड की प्रतिस्पर्धा अन्य साधारण दर्द निवारकों (जैसे पैरासिटेमाल, इब्रुप्रोफेन और एस्पिरिन) से है।

निमेसुलाइड के आलोचक बताते हैं कि इस दवा को अमरीका के खाद्य व औषधि प्रशासन ने यू.एस. में उपयोग की अनुमति नहीं दी है। ऐसा माना जाता है कि यू.एस. के बाज़ार में प्रवेश करने से पहले किसी भी दवा को कठोरतम जांच से गुज़रना होता है। वैसे यह दवा सबसे पहले 1980 के दशक में इटली में बिकना शुरू हुई थी मगर हाल में युरोप के देश इसके साइड प्रभावों को लेकर सचेत हो गए हैं। मगर भारत में निमेसुलाइड का इस्तेमाल बढ़ता जा रहा है; डॉक्टर आम तौर पर वही दवा लिखते हैं जिसका प्रचार-प्रसार आक्रामक ढंग से हो। बुखार और दर्द के मामले में लोग खुद भी दवा ले लेते हैं। ऐसी स्थिति में दवा के उपयोग का फैसला तार्किक विश्लेषण के आधार पर नहीं बल्कि प्रचार-प्रसार की रणनीति से होने लगता है।

भारत में आम चिकित्सा के कारोबार का एक कड़वा सचा यह है कि हमारे डॉक्टरों के पास जानकारी का एकमात्र स्रोत मेडिकल रिप्रेजेंटेटिव (एम.आर.) हैं। ये एम.आर. तमाम अस्पतालों, क्लिनिक्स में मंडराते देखे जा

सकते हैं। हमारे यहां मेडिकल पाठ्यक्रम में औषधि विज्ञान या विष विज्ञान कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं हैं। डॉक्टरों की सतत शिक्षा भी हमारे यहां कोई मुद्दा नहीं है। दवाइयों के सुरक्षित होने का पूरा ज़िम्मा भारत के औषधि नियंत्रक पर है। औषधि नियंत्रक स्वास्थ्य मंत्रालय के अधीन काम करता है। सवाल यह है कि क्या औषधि नियंत्रक के पास इतनी सुविधाएं हैं कि वह दवाइयों के बारे में वैज्ञानिक ढंग से फैसले कर सके? आज औषधि के क्षेत्र में तकनीकी पेचीदगियां दिनों दिन बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में क्या एक मंत्रालय के अधीन काम कर रहे दफ्तर से यह उम्मीद की जा सकती है कि वह कार्यक्षम व विश्वसनीय ढंग से अपने दायित्वों का निर्वाह करेगा? क्या मंत्रालयीन तहजीब में धंसा एक कार्यालय दवा कंपनियों के दबावों का सामना कर पाएगा?

निमेसुलाइड पर चल रहे ताजा हमले और बच्चों में लीवर पर होने वाले कुप्रभावों की खबरों को जिस तरह प्रचारित किया जा रहा है, उसके पीछे ज़रूर दवा कम्पनियों का हाथ होगा क्योंकि वे इस तरह के युद्ध छेड़ती रहती हैं। ज़ाहिर है, निमेसुलाइड तथा अन्य दर्द निवारकों से सम्बंधित जानकारी तो काफी समय से पता रही होगी। यदि चिंता की कोई बात थी, तो यह औषधि नियंत्रक का कर्तव्य था कि जनता को इससे अवगत कराए। उसका कर्तव्य मात्र यह नहीं है कि अखबारों में हल्ला हो जाने पर जवाब दे। यह दवा कम्पनियों, खासकर अनुसंधान सुविधाओं से लैस दवा कम्पनियों का भी दायित्व है कि वे विश्वसनीय आंकड़े प्रस्तुत करें और दर्शाएं कि इस दवा का कोई हानिकारक असर नहीं है। वैसे यदि निमेसुलाइड यू.एस. में बिक रही होती, तो ये सवाल कभी न उठते।

निमेसुलाइड के किस्से से थैलिडोमाइड की कहानी याद हो आती है। 1950 के दशक में जर्मनी, ब्रिटेन व कई अन्य देशों में थेलिडोमाइड का उपयोग गर्भावस्था के दौरान सुबह-सुबह होने वाली तकलीफों व मितली के उपचार के लिए किया जा रहा था। इसके कारण 1960 के दशक में विकृत बच्चे पैदा हुए। वैसे इस दवाई के अन्य साइड प्रभाव तो पहले ही पता थे। परन्तु दवा की बिक्री फौरन बंद नहीं की गई, धीरे-धीरे ही इसे बाज़ार से हटाया गया। तब तक काफी नुकसान हो चुका था - करीब 10,000 बच्चे जन्मजात विकलांग पैदा हुए थे। इस संदर्भ में भी यू.एस. के खाद्य व औषधि प्रशासन ने इस दवा के उपयोग की मंज़ूरी नहीं दी थी। उसने यह कार्रवाई विकलांग बच्चों की आशंका के कारण नहीं बल्कि पेरिफेरल न्यूराइटिस जैसे साइड प्रभाव के कारण की थी।

मगर सारी बदनामी के बावजूद थैलिडोमाइड वापिस आ गई है। इस दवाई के नए उपयोग खोज लिए गए हैं। कुछ समय तक थैलिडोमाइड का उपयोग एक सूजनरोधी की तरह हुआ - खासकर कुष्ठ रोगियों में चमड़ी पर दर्दनाक गठानों के लिए। थैलिडोमाइड प्रतिरक्षा तंत्र में परिवर्तन की क्षमता रखती है, कोशिकाओं की गति को रोकती है, और नई रक्त नलिकाएं बनने से रोकती है। इन गुणों के कारण इसका उपयोग एड्स में देखा जा रहा है।

इन्हीं गुणों के कारण थैलिडोमाइड एक बार फिर उभरी है। भारत में कुष्ठ रोगियों में इसके उपयोग की अनुमति दे दी गई है। ज़ाहिर है इस फैसले पर सवाल भी उठाए गए हैं। दवा कंपनियां इसे बेचने को बहुत उत्सुक नहीं हैं क्योंकि इसका बाज़ार इतना बड़ा नहीं है कि मुनाफा कमाया जा सके। दरअसल दवाइयों के नियमन व डॉक्टरों द्वारा उनके उपयोग के संदर्भ में इस बात का बहुत महत्व होता है कि उनमें व्यावसायिक संभावना कितनी है।

जब जैव टेक्नॉलॉजी के उत्पाद, खासकर पुनर्मिश्रित प्रोटीन नुस्खे, सामने आएंगे तब औषधि नियंत्रण के मामले में और पेचीदगियां पैदा होंगी। विषैले असर की जांच के अलावा गुणवत्ता और पहचान के मुद्दे भी इसमें जुड़ जाएंगे। औषधि नियंत्रक कार्यालय इन मुश्किल तकनीकी समस्याओं से निटपने में सक्षम है या नहीं, यह सार्वजनिक चिंता का विषय होना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***